योग का अर्थ

'योग' पद धातुपाठ के अनुसार 'युजिर् योगे' तथा 'युज् समाधौ' दो प्रकार से निष्पन्न माना जाता है। दोनों धातुओं से अलग-अलग बने हुए 'योग' शब्दों का अर्थ क्रमशः 'जोड़' और 'समाधि' होता है। अनेक ग्रन्थों में 'युजिर् योगे' से निष्पन्न योग पद प्रयुक्त हुआ है क्योंकि वहाँ उससे अभिप्रेत अर्थ दो पदार्थों में संयोग दिखाना ही है। जैसे न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनों में जिस योग शब्द का व्यवहार किया गया है और जिस योग की साधना से उनके योगज प्रत्यक्ष नामक अलौकिक सन्निकर्ष की सिद्धि होती है, वह योग आत्मा और मन के अत्यन्ताधिक संयोग का ही अभिप्राय रखता है। अतः उसे 'युजिर् योगे' धातु से ही निष्पन्न मानना चाहिए।

योगयाज्ञवल्क्य में जीवात्मा और परमात्मा के संयोग को योग की संज्ञा दी गई है-

संयोगो योग इत्युक्तः जीवात्मपरमात्मनोः।

(योगयाज्ञवल्क्य 1/44)

यहाँ भी जो संयोग अर्थ आया है, वह भी 'युजिर् योगे' धातु से ही निष्पन्न मानना चाहिए। परन्तु योगदर्शन में जिस योग पद का उल्लेख किया गया है, उसे व्यासभाष्य के अनुसार 'युज् समाधौ' धातु से निष्पन्न मानना चाहिए-

योगः समाधिः स च सार्वभौमः
चित्तस्य धर्मः। (योगसूत्र 1/1 पर व्यासभाष्य)

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि योग शब्द को 'युज् समाधौ' धातु से समाधि अर्थ में स्वीकार करना चाहिए न कि 'युजिर् योगे' धातु से संयोग अर्थ में-

'युज् समाधौ' इत्यस्माद्व्युत्पन्नः समाध्यर्थो
न तु 'युजिर् योगे' इत्यस्मात्संयोगार्थ इत्यर्थः।

(योगसूत्र 1/1 पर तत्त्ववैशारदी)

योग का लक्षण

पतञ्जलि योग का लक्षण देते हुए कहते हैं कि चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (योगसूत्र 1/2)

वाचस्पति मिश्र के अनुसार चित्त से तात्पर्य अन्तःकरण बुद्धि से है-

चित्तशब्देनान्तःकरणं बुद्धिमुपलक्षयति।
(योगसूत्र 1/1 पर तत्त्ववैशारदी)

विज्ञानभिक्षु के अनुसार अन्तःकरण सामान्य जिसे चित्त कहा जाता है वास्तव में तो एक ही है परन्तु वृत्तिभेद के कारण उसके चार विभाग माने जाते हैं-

चित्तमन्तःकरणसामान्यमेकस्यैवान्तःकरणस्य
वृत्तिभेदमात्रेण चतुर्धाऽत्र दर्शने विभागात्। (योगवार्त्तिक)

सम्भवतः इनका तात्पर्य अन्तःकरण से अन्य दर्शनों में अभिमत मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार से हो।

कुछ विद्वान् मन, बुद्धि एवं अहङ्कार को मिलाकर चित्त रूप में स्वीकार करते हैं। ये चित्त चञ्चल प्रकार के होते हैं इसलिए उनका निरोध करना बेहद जरूरी माना जाता है। यही योगाभ्यास या आध्यात्मिक साधना कहलाती है।

चित्तभूमि

चित्तभूमि का मतलब है- 'मानसिक' अवस्था। महर्षि व्यास योग दर्शन के अन्तर्गत चित्त की पाँच प्रकार की अवस्थाओं या पाँच चित्त भूमियों को मानते हैं। यथा- 1. क्षिप्तावस्था 2. मूढ़ावस्था 3. विक्षिप्तावस्था 4. एकाग्रावस्था एवं 5. निरुद्धावस्था आदि।

क्षिप्तावस्था- चित्त की वह अवस्था कहलाती है, जिसमें चित्त रजोगुण के प्रभाव में रहता है। इस अवस्था में चित्त काफी चञ्चल हो जाता है तथा सक्रिय रहता है। उस चित्त का ध्यान किसी एक चीज पर केन्द्रित नहीं हो पाता है। लेकिन इस हालत में इंसान का चित्त एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर दौड़ता रहता है। इस अवस्था को योग के अनुकूल नहीं माना जाता। चित्त के चञ्चल होने की वजह यह है कि इस अवस्था में इन्द्रियों पर तथा मन के ऊपर का संयम (आत्मनियंत्रण) नहीं होता है।

मूढ़ावस्था- चित्त की वह अवस्था कहलाती है, जिसमें चित्त तमोगुण के प्रभाव में रहता है। इस कारण से मानव के चित्त में निद्रा और आलस्य की प्रबलता रहती है। चित्त के अन्दर निष्क्रियता भी पैदा हो जाती है। इस अभ्यास में भी व्यक्ति का चित्त योगाभ्यास के योग्य नहीं रह पाता है।

विक्षिप्तावस्था- यह चित्त की तीसरे प्रकार की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त का ध्यान कुछ समय के लिए वस्तु पर चला जाता है परन्तु वह उस वस्तु पर टिक नहीं पाता है अथवा स्थिर नहीं रह पाता है। चित्त की स्थिरता का इस अवस्था में आंशिक प्रभाव रहता है। यह एक ऐसी अवस्था है, जिसमें चित्तवृत्तियों का कुछ निरोध हो जाता है। लेकिन इस अवस्था से योगाभ्यास में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल पाती। विक्षिप्तावस्था में चित्त के अन्दर रजोगुण थोड़े अंश में मौजूद रहता है। लेकिन तमोगुण इस अवस्था में नहीं होता। यह रजोगुण क्षिप्तावस्था और मूढ़ावस्था के बीच की अवस्था होती है।

एकाग्रावस्था- यह चित्त की चौथे प्रकार की अवस्था है। इस अवस्था में मानव का चित्त सत्त्वगुण के प्रभाव में रहता है। चूँकि चित्त में सतोगुण की प्रबलता होती है, इस कारण से इस अवस्था में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। ज्ञान प्रकाश की वजह से चित्त अपने विषय पर देर तक ध्यान लगाए रहता है। वैसे इस अवस्था में मानव की सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं हो पाता है लेकिन योगाभ्यास में यह अवस्था इन्सान की काफी मदद करती है।

निरुद्धावस्था- यह चित्त की पाँचवीं अवस्था है। इस अवस्था में मनुष्य अपने चित्त को सभी विषयों से हटाकर एक विषय पर एकाग्र या ध्यानमग्न कर लेता है। इस अवस्था में मानव की समस्त चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है। फलस्वरूप चित्त के अन्दर पूरी तरह से स्थिरता आ जाती है। आस-पास के विषय मानव के चित्त को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते हैं।

क्षिप्तावस्था, मूढ़ावस्था और विक्षिप्तावस्था- चित्त की ये तीन अवस्थाएँ चित्त की साधारण अवस्थाएँ कहलाती हैं जबकि एकाग्रावस्था और निरुद्धावस्था को चित्त की असाधारण अवस्थाएँ कहा जाता है।